विद्यालय निरीक्षण, अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन

केवलानंद काण्डपाल*

गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोर ने एक बार कहा था कि एक शिक्षक वास्तव में तब तक नहीं पढ़ा सकता है जब तक कि वह निरंतर सीखता न रहे। एक दीपक दूसरे दीपक को तब तक प्रकाशमान नहीं कर सकता जब तक कि वह स्वयं नहीं जल रहा हो। इससे शिक्षक की सतत शिक्षा की ज़रूरत को समझा जा सकता है। शिक्षकों के शिक्षण-प्रशिक्षण के अतिरिक्त जो महत्वपूर्ण बात शिक्षकों के कार्य-प्रदर्शन पर गहन असर डालती है, वह यह है कि शिक्षकों के अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन की क्या-क्या प्रक्रियाएँ वास्तव में अपनाई जा रही हैं। विगत 11 वर्षों से भी अधिक समय से ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान में कार्यरत होने के दौरान राज्य (उत्तराखंड) में और विशेष रूप से जनपद में विद्यालय छापों, निरीक्षण एवं अनुश्रवणों के बारे में सजग अवलोकन के आलोक में गहन मंथन या यूँ कह सकते हैं कि गहन पीड़ा ने निरंतर इस बात के लिए प्रेरित किया कि इस बारे में विद्वत् समुदाय के समक्ष विचारों को साझा किया जाए। किसी विद्यालय का निरीक्षण, छापा या अनुश्रवण जो कुछ भी हो, यह विद्यालय को मदद करने एवं शिक्षक को सशक्त करने के क्रम में ही होना चाहिए। इस आलेख के माध्यम से मेरे पास 'विद्यालय अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन' के बारे में अपने विचार रखने का अवसर है और यह एक तरह से शुरुआती विचार हो सकता है, परंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि इस मुद्दे पर लगातार और गहन विमर्श किया जाए। विद्यालयों को छापों से मुक्ति मिले और शिक्षक को औचक निरीक्षणों में शर्मिंदगी से न गुज़रना पड़े, इसके लिए ज़रूरी है कि शिक्षा के सभी स्तरों पर विद्यालय अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन को लेकर वैचारिक स्पष्टता हो। नीतिगत स्तर पर इसका संज्ञान लिया जाए। वस्तुतः शिक्षा तंत्र का पूरा ताम-झाम विद्यालय को मदद पहुँचाने एवं शिक्षक को सशक्त करने के लिए ही तो है। इसी मंशा से विद्यालय अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर यह लेख लिखने का प्रयास किया गया है। इस लेख में उत्तराखंड में होने वाले विद्यालय अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन के अंतर्गत विद्यालय में छापे, निरीक्षण एवं अनुश्रवण की वस्तुस्थिति रखने का प्रयास किया गया है।

सार्वजनिक शिक्षा किसी भी लोकतांत्रिक देश की महत्वपूर्ण ज़रूरतों में से एक ज़रूरत होती है। लोकतंत्र के विकास के लिए विवेकशील नागरिकों की ज़रूरत होती है और सार्वजनिक शिक्षा से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने नागरिकों में विवेकशीलता विकसित करेगी। लोकतंत्र में शिक्षा से यह भी उम्मीद की जाती है कि वह अपने नागरिकों का हुनर इस तरह से विकसित करेगी कि ज़रूरत पड़ने पर वे अपने विवेक का उचित इस्तेमाल कर सकें। इसलिए शिक्षण एक गंभीर सामाजिक कर्म है। इस गंभीरता के अनुपालन की अपेक्षा न केवल शिक्षण कार्य कर रहे व्यक्ति से, वरन् उन सभी हितधारकों से की जानी

**व्याख्याता*, ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, बागेश्वर, उत्तराखंड – 263642

चाहिए, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा प्रणाली से जुड़े हैं। कोठारी आयोग (1964–66) ने अपनी रिपोर्ट के शुरुआती हिस्से में इसको रेखांकित करते हुए लिखा है, "भारत का भविष्य इसकी कक्षाओं में निर्मित हो रहा है।''(The destiny of India is now being shaped in her classroom)। इस कथन के गंभीर शैक्षिक निहितार्थ हैं और यह विचार देश के भविष्य निर्माण में शिक्षकों की भूमिका को रेखांकित करता है। आज़ादी के दौर में ही राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी ने शिक्षा तंत्र में शिक्षकों की भूमिका को रेखांकित करते हुए कहा था, "मैं हमेशा से ही महसूस करता रहा हूँ कि एक विद्यार्थी के लिए सर्वोत्तम पाठ्यपुस्तक शिक्षक है।" किसी भी शिक्षा प्रणाली में शिक्षक की अहम भूमिका होती है और लोकतांत्रिक देश के संदर्भ में तो यह भूमिका और अधिक गहन हो जाती है। शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक एक स्वतंत्र एजेंसी है और यह स्वतंत्रता अकादमिक होनी चाहिए। शिक्षा प्रणाली में नीतियाँ, अधिनियम, प्रशासन तंत्र एवं अनुश्रवण तंत्र सभी शिक्षक एजेंसी को मज़बूती प्रदान करने के लिए होते हैं, वस्तुतः यह होना ही चाहिए। शिक्षक एजेंसी को मज़बूती देने के लिए, शिक्षक की तैयारी के क्रम में शिक्षक प्रशिक्षण/शिक्षा एक महत्वपूर्ण उपक्रम है। इस क्रम में शिक्षक शिक्षा पर एक विहंगावलोकन करने की दृष्टि से औपनिवेशिक काल एवं उसके बाद स्वतंत्र भारत के दौर को मिलाकर देखें तो शिक्षक शिक्षा/प्रशिक्षण के इतिहास को तीन चरणों में क्रमबद्ध किया जा सकता है।

प्रथम चरण — **प्यूपिल-टीचर प्रणाली**— औपनिवेशिक काल के प्रारंभ होने के पहले एवं इसके शुरुआती वर्षों तक शिक्षा एवं विशेषकर शिक्षक शिक्षा के लिए व्यवस्थित प्रणाली का अभाव नज़र आता है। इस कारण शिक्षक तैयार करने की ऐसी प्रणाली लागू की गई जिसे मॉनीटर प्रणाली भी कहा गया। इस प्रणाली में विद्यार्थियों के छोटे-छोटे समूह की निगरानी अपेक्षाकृत होशियार माना जाने वाला विद्यार्थी करता था जो समूह को सीखने में मदद करता था तथा इसकी रिर्पोटिंग मुख्य कक्षा शिक्षक को करता था। कक्षा शिक्षक की अनुशंसा के बाद ऐसा मॉनीटर शिक्षक बनने के योग्य मान लिया जाता था। यह क्रम सन् 1800 से 1822 तक चलता रहा। वास्तव में, इस अवधि में शिक्षक शिक्षा एवं अनुसमर्थन के लिए किसी भी प्रकार का संस्थागत स्वरूप मौजूद ही नहीं था।

द्वितीय चरण — सर मुनरो द्वारा अपने मिनिट्स में (13 दिसंबर, 1923) में शिक्षक शिक्षा में सुधार के लिए कुछ विचार रखे गए थे। जून 1926 में स्कूली शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए पहला स्कूल मद्रास (वर्तमान में चेन्नई) में शुरू किया गया, तब इसे 'नॉर्मल स्कूल' कहा गया। उपनिवेश काल के शुरुआती दौर से ही शिक्षा को औपनिवेशिक हित-साधन के रूप में देखा गया। इसके लिए ऐसे शिक्षकों को तैयार करने पर ज़ोर दिया गया, जो कठोर अनुशासन के द्वारा विद्यार्थियों को एक ऐसे साँचे में ढाल सकें जो औपनिवेशिक शासन के आज्ञापालक बन सकें। अतः इस दौर में शिक्षकों के कठोर प्रशिक्षण को शिक्षक तैयार करने की प्रक्रिया के रूप में अपनाया गया। इस शिक्षक-प्रशिक्षण का मुख्य ज़ोर कक्षा-कक्ष में अनुशासन, सीखने-सिखाने में अभ्यास एवं रटंत संबंधी

कौशलों के विकास पर था। वस्तुतः उपनिवेश काल में शासकों का मुख्य ध्येय ऐसे व्यक्ति का निर्माण करना था जो कोई प्रश्न उठाए बगैर दिशा-निर्देशों की अनुपालना करे। इस दौर के नॉर्मल स्कूलों (जो बुनियादी शिक्षक की तैयारी के स्कूल थे।) के कठोर अनुशासन की बहुत सारी कहानियाँ आज भी हमें भयाक्रांत कर सकती हैं। शिक्षकों/विद्यालयों के निरीक्षण की कठोर प्रणाली शिक्षकों/विद्यालयों को किसी प्रकार का अनुसमर्थन देने के बजाय भयादोहन का वातावरण संरचित करती थी।

तृतीय चरण —शिक्षक शिक्षा—स्वतंत्रता के बाद के दौर में शिक्षक शिक्षा को शिक्षक प्रशिक्षण के स्थान पर शिक्षक शिक्षा के रूप में देखा जाने लगा। इसमें शिक्षक की तैयारी के साथ-साथ शिक्षक के पेशेवर जीवन में सतत प्रशिक्षण को भी इसका अभिन्न अंग माना जाने लगा। इसमें शिक्षकों की शिक्षण से संबंधित समस्याएँ, शिक्षण की नवीनतम विधाओं, जैसे— रचनात्मक शिक्षण आदि, नवाचारों को शामिल किया जाने लगा। शिक्षक शिक्षा के एक ऐसी आज़ादी के बाद के दौर एवं एकदम हाल के दौर को मिला-जुलाकर देखा जा सकता है। इसके शुरुआती चरण में स्वतंत्र भारत में भारतीय संविधान के आलोक में देखे गए भावी समाज के सपने को पूरा करने के लिए ज़रूरी था कि शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा को खास तरजीह दी जाती, प्रारंभिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया जाता। कई कारणों से ऐसा हो नहीं पाया। मौलिक अधिकार के बजाय यह अनुच्छेद 45 में नीति-निर्देशक सिद्धांत ही बन सका। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति— 1986* एवं उसकी कार्य योजना 1992 में शिक्षक शिक्षा एवं शिक्षकों को अनुसमर्थन देने के लिए ज़िला स्तर पर ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान की संकल्पना की गई। हालाँकि बाद के वर्षों में ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान की क्षमता संवर्द्धन के लिए प्रयासों के अभाव में ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान भी शिक्षकों/विद्यालयों को अकादमिक अनुसमर्थन की भूमिका में बहुत प्रभावी नहीं हो पाए, यह एक सर्वज्ञात तथ्य है। 1973 में शिक्षक शिक्षा के संबंध में सलाहकारी संस्था के रूप में राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई। 1993 में इसे संवैधानिक दर्जा भी प्राप्त हो गया। इसका मुख्य फ़ोकस शिक्षक शिक्षा को विनियमित करना रहा है। विगत हाल के अनुभव बताते हैं कि यह संस्था शिक्षक शिक्षा संस्थानों की मान्यता के मकड़जाल में इस कदर उलझ गया है कि शिक्षक के सतत व्यावसायिक विकास एवं अनुसमर्थन के मुद्दे पर ध्यान देने का न तो वक्त है, न ही दृष्टि। 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (यह स्कूली शिक्षा में संलग्न निजी विद्यालयों पर पूरी तरह से लागू नहीं होता। अधिनियम के अंतर्गत नामांकित 25 प्रतिशत बच्चों के संबंध में ही प्रभावी है। दूसरा—पूर्व प्राथमिक शिक्षा के संबंध में कोई विधिक व्यवस्था नहीं देता है, तो आधे-अधूरे रूप में ही सही) लागू हुआ। इसमें शिक्षक की योग्यता, उसके कार्य-दायित्वों के बारे में नियम बनाए गए, परंतु शिक्षक/विद्यालयों को अनुसमर्थन देने वाली संस्थाओं, जैसे— ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान की भूमिका के बारे मे स्पष्ट दिशा-निर्देशों की कमी साफ़ नज़र आती है। 2009 में ही शिक्षक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में मानवीय दृष्टिकोण वाले शिक्षकों के विकास की बातें की गईं, परंतु इनके धरातल में

उतरने की अभी भी प्रतीक्षा है। इधर हाल ही के वर्षों में ब्लॉक/संकुल संदर्भ व्यक्ति के रूप में शिक्षकों/विद्यालयों को अनुसमर्थन देने वाली एक एजेंसी के रूप में परिकल्पना की गई है। यद्यपि DPEP (District Primary Education Programme) एवं बाद में ब्लॉक/संकुल समन्वयकों की भूमिका सूचनाओं के संग्रहकर्ता/प्रदाता की ही अधिक रही है। शिक्षक शिक्षा एवं शिक्षकों/विद्यालयों को अनुसमर्थन के इस संक्षिप्त विहंगावलोकन के बाद हम विद्यालय अनुश्रवण एवं शिक्षक अनुसमर्थन के मूल मुद्दे पर लौट सकते हैं।

विद्यालय में बच्चों के बीच शिक्षक की विश्वसनीयता एक अहम घटक है। वस्तुतः विद्यालय में शिक्षक ही वह व्यक्ति है जिस पर बच्चे पूर्णतः विश्वास कर सकते हैं कि वह जो कुछ भी शैक्षणिक प्रक्रियाएँ/गतिविधियाँ करवा रहे हैं, वह बच्चों के सीखने में मददगार हैं। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में, जब भी बच्चों को किसी मदद की ज़रूरत हो, जिज्ञासा के क्रम में किसी सूचना, तथ्य एवं जानकारी के लिए शिक्षक एक विश्वसनीय सत्ता है। हम अपने बच्चे को किसी भी व्यक्ति के पास एक पल के लिए छोड़ने से पहले सौ बार सोचते हैं, जबकि विद्यालय में किसी शिक्षक की निगरानी में बच्चों को भेजते हैं तो यह सोचकर सुकून से भर जाते हैं कि हमारा बच्चा न केवल सुरक्षित है, वरन् इस अवधि में बच्चा कुछ-न-कुछ सीख भी रहा है, इस विश्वास से भरे रहते हैं। शिक्षक एजेंसी की विश्वसनीयता बहुत-से घटकों पर निर्भर करती है। शिक्षक अपने अध्यापन पेशे को किस तरह से व्यवहार में ला रहे हैं, यह तो महत्वपूर्ण है ही, परंतु इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि समय-समय पर विद्यालय में आने वाले प्रशासकीय अधिकारी, निरीक्षणकर्ता, अनुश्रवण कार्मिक, अभिभावक एवं समुदाय शिक्षक से किस तरह का बर्ताव करते हैं। इस व्यवहार के विविध आयाम हो सकते हैं। मसलन विद्यालय की खामियों को ढूँढ़ निकालना और इसके लिए किसी भी तरह से शिक्षक को ज़िम्मेदार ठहरा देना, विद्यालय/शिक्षक को अनुश्रवण की कोई पूर्व सूचना न देना व विद्यालय में पहुँचकर विद्यालय में एक तरह से हड़बड़ी एवं घबराहट का माहौल बनाना (शिक्षा प्रशासन की भाषा में इसे छापा मारना बताया जाता है, इसकी आगे चर्चा करेंगे।), किसी एक-पक्षीय शिकायत की इकतरफ़ा जाँच के क्रम में विद्यालय निरीक्षण, बहुत बार विद्यालय निरीक्षण के क्रम में ऐसे अनपेक्षित समय में विद्यालय पहुँच जाना (इस तरह के मामले में सड़क के नज़दीक के विद्यालय हमेशा ही दुष्चिन्ता में रहते हैं, सुविधा के लिहाज़ से इन विद्यालयों में उच्चाधिकारियों, जनप्रतिनिधियों के पहुँचने की संभावना एवं बारंबारता सबसे अधिक होती है।), ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के अकादमिक अभिकर्मियों के द्वारा विद्यालय अनुश्रवण के क्रम में विद्यालय आगमन (यद्यपि इनके विद्यालय में होने से शिक्षक थोड़ा बहुत आश्वस्त रहते हैं कि अकादमिक मामलों में कुछ-न-कुछ मदद तो मिल ही जाएगी, परंतु यहाँ पर भी अनुश्रवण व्याख्या की थोड़ी-बहुत ही सही, चिंता तो रहती ही है।), शिक्षक एवं समुदाय के व्यक्ति यदा-कदा विद्यालय पधारते भी हैं तो किसी शिकायत के क्रम में या फिर किसी ऐसे मामले में जिसमें उन्हें लगता है कि शिक्षक ही

इस मामले का सूत्रधार है। इस तरह से इन सभी आगमनों से विद्यालय/शिक्षक की विश्वसनीयता पर नकारात्मक असर ज़रूर पड़ता है।

एक अन्य प्रश्न है जो शिक्षक की पहचान एवं हैसियत से जुड़ा संवेदनशील मामला है। हमारे देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षक सत्ता पदनुक्रम में सबसे निचले पायदान पर मौजूद कार्मिक है, जिसे शिक्षा प्रणाली की किसी भी असफलता के लिए ज़िम्मेदार ठहराना बहुत आसान है (यद्यपि यह तथ्य देश के विगत कालखंड के लिए भी उतना ही सही है।)। वर्तमान में सरकारी प्रारंभिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की घटती संख्या के लिए शिक्षक को ज़िम्मेदार ठहराया जा रहा है और नीतिगत स्तर पर कहा जा रहा है कि अति न्यून विद्यार्थी नामांकन वाले विद्यालयों को बंद करके उनका निकटवर्ती विद्यालयों में संलयन (merge) किया जाएगा। यह एक तरह से शिक्षकों का भयादोहन है। वस्तु स्थिति इससे भिन्न है। इस संदर्भ में एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य है कि जनपद के 592 राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में से 250 से अधिक विद्यालय ऐसे हैं जो एकल शिक्षक द्वारा चलाए जा रहे हैं। जनपद के कतिपय संकुलों में जितने सरकारी प्राथमिक विद्यालय हैं, उतनी संख्या में शिक्षक नहीं हैं। सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों से शिक्षकों की व्यवस्था करके सरकारी प्राथमिक विद्यालय संचालित किए जा रहे हैं। जनपद बागेश्वर (उत्तराखंड) के अलावा राज्य के अन्य जनपदों में भी कमोवेश यही स्थितियाँ हैं।

अभिभावकों एवं समुदाय के लोगों से बातचीत करने पर दूसरी बात सामने आती है। उनका कहना है कि सरकारी विद्यालयों से निकालकर हम अपने बच्चे निजी विद्यालयों में इसलिए भेज रहे हैं कि सरकारी विद्यालयों में प्रत्येक कक्षा हेतु शिक्षक ही नहीं होते। सरकारी स्कूलों में एक शिक्षक या बहुत कम विद्यालयों में दो शिक्षक हैं। ऐसे में हमारा बच्चा क्या पढ़ पाएगा? निजी विद्यालयों में कम-से-कम प्रत्येक कक्षा के लिए हर वक्त एक शिक्षक तो है। यह तथ्य इस बात से भी पुष्ट होता है कि इधर हाल ही में सरकारी आदर्श प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से बढ़ी भी है। सरकारी आदर्श प्राथमिक विद्यालयों में भौतिक सुविधाओं में कोई अंतर नहीं है, अंतर है तो सिर्फ़ इस बात का कि वहाँ पर प्रत्येक कक्षा एवं विषय के लिए शिक्षक उपलब्ध हैं। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि सरकारी विद्यालयों में बच्चों का नामांकन कम होना शिक्षकों के कारण नहीं है, वरन् शिक्षकों की कमी इसका कारण है। इस प्रकार से उन परिणामों के लिए भी शिक्षक को ज़िम्मेदार ठहराना जिसके लिए वह ज़िम्मेदार ही नहीं है, शिक्षक की हैसियत पर नकारात्मक असर डालते हैं, समुदाय में उसकी पहचान को प्रभावित करते हैं। कोई विद्यालय केवल विद्यालय भवन, विद्यार्थियों एवं शिक्षकों से मिलकर नहीं बनता है, इसके अलावा शिक्षक की विश्वसनीयता, शिक्षा प्रणाली में शिक्षक की हैसियत एवं शिक्षक एवं बच्चों का आपसी विश्वास किसी विद्यालय को सही अर्थों में विद्यालय बनाते हैं।

जैसा कि इस लेख के शुरुआती हिस्से में कहा गया है कि सरकारी शिक्षा प्रणाली के सारे ताम-झाम विद्यालय की मदद के लिए हैं, शिक्षक को अनुसमर्थन देने के लिए हैं। सरकारी शिक्षा प्रणाली

अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो, यह सभी की सामूहिक जवाबदेही है, न केवल शिक्षक की। तमाम शिक्षा अधिकारियों, ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान अभिकर्मियों एवं जन प्रतिनिधियों की विद्यालय में मौजूदगी शिक्षक के मनोबल को बढ़ाने में मददगार होनी चाहिए, उसकी अकादमिक समस्याओं/आवश्यकताओं को संबोधित करने का उपक्रम होनी चाहिए। क्या वास्तव में ऐसा हो पाता है? इसकी जाँच-पड़ताल से पहले यह विश्लेषण करना उपयुक्त होगा कि वर्तमान में विद्यालयों में विभिन्न आगमनों के प्रारूप क्या-क्या हैं? विद्यालयों में उनके व्यवहार के कौन-कौन से प्रारूप हैं? शिक्षक के प्रति उनका रवैया किस तरह का होता है? इसकी अकादमिक पहलू से जाँच-पड़ताल करने की आवश्यकता है। इस जाँच-पड़ताल के बाद हमें यह जानने-समझने में मदद मिल सकेगी कि विद्यालय अनुश्रवण एवं विद्यालय में शिक्षक को अनुसमर्थन देने का सबसे उपयुक्त तरीका क्या हो सकता है? विद्यालय के निरीक्षण एवं अवलोकन के जो तरीके प्रचलित हैं, उनमें छापा मारना, औचक निरीक्षण, अनुश्रवण आदि प्रमुख हैं। इनमें आकस्मिकता का पुट कमोवेश सभी में रहता है, परंतु भय सृजन की तीव्रता में ज़रूर अंतर दिखाई पड़ता है। अतः वर्तमान में विद्यालय निरीक्षण के जो तौर-तरीके देखने-सुनने में आते हैं, उनमें कुछ प्रमुख निम्न हैं —

1. **छापा मारना** — विद्यालय में बिना किसी पूर्व सूचना के विद्यालय निरीक्षण के लिए पहुँचना एक आम अभ्यास है और इसे आकस्मिकता के भयादोहन के कारण 'छापा मारना' के प्रचलित नाम से अधिक जाना जाता है। यह राज्य में एक सामान्य प्रशासनिक अभ्यास है, संभवतः देश के अन्य राज्यों में कमोवेश यही स्थिति है। विद्यालय निरीक्षण के नाम पर छापा मारना एक बहुत प्रचलित विधि है। वस्तुतः छापा-मार एक युद्ध रणनीति है, जिसमें दुश्मन सेना पर उस समय आक्रमण किया जाता है जब असावधान हो। निरीक्षण की इस विधि में प्रायः समय का चयन भी इस प्रकार से किया जाता है कि शिक्षक वहाँ उपलब्ध हो। यह समय सामान्यतः विद्यालय की शुरुआत के 10–15 मिनट या विद्यालय बंद होने के पूर्व 10–5 मिनट होता है। इसमें इतनी अधिक गोपनीयता बरती जाती है कि उस ब्लॉक के, संकुल के किसी भी ज़िम्मेदार व्यक्ति को इसकी जानकारी तक नहीं रहती। इसका मूल उद्देश्य किसी शिक्षक को दण्डित करके अन्य शिक्षकों में भय का माहौल पैदा करना है। इस तरह के स्कूल-छापों के बाद अगले ही दिन शिक्षकों को दण्डित करने (यथा स्पष्टीकरण, वेतन रोकना, सस्पेंड करना) की खबरें समाचार-पत्रों की सुर्खियाँ बन जाती हैं। इसके प्रशासनिक मकसद चाहे जो भी हों, (यत्किंचित पूरे भले ही होते हों) शिक्षक एवं विद्यालयों को इसका कुछ भी अकादमिक लाभ मिलता हो, ऐसा कोई उदाहरण देखने-सुनने में तो नहीं आता है। इसके विपरीत विद्यालय एवं शिक्षक की सारी ऊर्जा मामले का निराकरण करने में खत्म होती है, सो अलग। इस प्रक्रिया से एक बात तो स्पष्ट है कि इसका मकसद शिक्षक की मदद करना तो नहीं होता।

इसका असर भी बहुत सकारात्मक नहीं देखा गया है, इसमें जो प्रशासनिक ऊर्जा एवं समय नष्ट होता है, उसके एवज में विद्यालय को किसी प्रकार की अकादमिक मदद नहीं मिलती है। उलटा होता यह है कि शिक्षक ऐसा सूचना तंत्र विकसित करने का प्रयास करने लगते हैं कि किसी तरह से भी छापे की पूर्व सूचना मिल जाए। यह प्रक्रिया तो शिक्षकों को एक विशेष किस्म के व्यवहार को बरतने को प्रेरित करती है, विद्यालय/शिक्षक को किसी भी प्रकार की अकादमिक मदद देना इसका मकसद भी नहीं होता और न ही वह मिल पाती है। औपनिवेशिक काल (संभवतः यह बहुत सही उदाहरण न हो।) की शैक्षिक प्रणाली के अध्ययन में भी हमें छापामारी के बहुत विरल उदाहरण मिलते हैं। विद्यालय निरीक्षकों के निरीक्षण दौरे के भयावह विवरण सुनने को मिलते हैं, परंतु इस प्रकार के दौरों की पूर्व सूचना समय रहते विद्यालयों को दी जाती थी, जिससे विद्यालय निरीक्षण आवश्यकताओं के अनुरूप समुचित तैयारी कर सकें।

2. **आकस्मिक/औचक निरीक्षण** — छापामारी की तुलना में इसमें भयादोहन का तत्व कुछ कम हो सकता है, परंतु बिना किसी पूर्व सूचना के विद्यालयों में इस प्रकार का आगमन विद्यालय में एक विशेष किस्म की हड़बड़ी/घबराहट पैदा कर देता है। सड़क मार्ग से सहज पहुँच वाले विद्यालयों में इस प्रकार के आकस्मिक/औचक निरीक्षण बहुतायत में देखने-सुनने में आते हैं। इस प्रकार के निरीक्षण के बहुत सारे स्तर देखने-सुनने में आते हैं, जैसे— सीधे कक्षा-कक्ष में पहुँचकर बच्चों से कुछ प्रश्न पूछना (बहुधा ये प्रश्न सूचनात्मक किस्म के होते हैं।) और बच्चों द्वारा सही जवाब न देने पर बच्चों के शैक्षणिक स्तर में गिरावट या उनका निम्न स्तर घोषित करके शिक्षक की पहचान एवं हैसियत को कमज़ोर बताते हुए चेतावनी जारी करना। सीधे कक्षा-कक्ष में प्रवेश करके, शिक्षक की अनुमति के बगैर बच्चों को पढ़ाने का उपक्रम करना। यह प्रारूप शिक्षक की हैसियत को बहुत ही नकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है। यह बच्चों के समक्ष इस तथ्य को प्रस्थापित करता है कि शिक्षक को ढंग से पढ़ाना नहीं आता है, इसीलिए आगंतुक, शिक्षक को कुछ नए ढंग से पढ़ाने-लिखाने की बात सिखा रहे हैं। इस प्रकार आगंतुक, बच्चे जिस शिक्षक पर अभी तक जो विश्वास कर रहे होते हैं, उस विश्वास की नींव को हिला देता है। इसका एक और विकृत रूप देखने में आता है, जब कक्षा में बच्चों के सामने ही शिक्षक से सवाल पूछकर उसके ज्ञान को जाँचने-परखने का काम किया जाता है, शिक्षक के लिए यह बहुत ही शर्मिंदगी की स्थिति होती है। उन बच्चों के सामने यह सब घटित होता है, जो यह विश्वास करते हैं कि पढ़ाने-लिखाने के क्रम में वह व्यक्ति एक विश्वसनीय स्रोत है। यह एक गंभीर प्रश्न है। यह तो पूरी तरह से शिक्षक/अध्यापिका की हैसियत/पहचान को संकट में डालने वाला व्यवहार ही माना जाएगा। इस प्रकार के व्यवहार से शिक्षा के कौन-से उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं? यह समझ से परे है।

3. **निरीक्षण जाँच** — यह प्रायः किसी शिकायत/विवाद के मामले में जाँच-पड़ताल के क्रम में किया जाता है। इसमें मूल भावना तो यही छुपी रहती है कि विद्यालय/शिक्षक प्रथम दृष्टया दोषी तो है ही। जाँच के दिन उनको अपना पक्ष रखना है, उनके पक्ष से संतुष्ट न होने पर, दोष सिद्ध मानते हुए प्रशासनिक कार्यवाही होना तय है। यदि विद्यालय/शिक्षक दोषी है तो इस प्रकार की जाँच-पड़ताल का औचित्य है भी। ऐसे बहुत-से वास्तविक उदाहरण देखने-सुनने में आए हैं कि शिक्षक तटस्थ भाव से एवं पूर्ण मनोयोग से अपना काम कर रहे हैं, परंतु कुछ लोगों को यह तटस्थता अनुकूल नहीं बैठती है। इस प्रकार की जाँच, समुदाय में शिक्षक की पहचान को प्रभावित करती है। यदि यह जाँच किसी विश्वसनीय आधार पर नहीं की गई है, तब भी शिक्षक की साख पर इसका गहरा असर पड़ता है, जिसकी भरपाई करने में शिक्षक को न जाने कितना समय लगेगा और वह हो भी पाएगी, यह भी निश्चित नहीं है। इस प्रकार के निरीक्षण में एक अच्छी बात यह है कि विद्यालय/शिक्षक को आगंतुक के मंतव्य की पूर्व सूचना होती है और अपना पक्ष रखने की तैयारी के लिए कुछ समय भी मिल जाता है।

4. **सामान्य निरीक्षण** — यह ऊपर दिए गए तरीकों से थोड़ा नरम किस्म का होता है। इस प्रकार के निरीक्षण की पूर्व सूचना दी जाती है। इसमें और औचक निरीक्षण में एक फ़र्क है। औचक निरीक्षण की प्रकृति ही अचानक उपस्थित होकर हतप्रभ कर देने की होती है, जबकि सामान्य निरीक्षण में विद्यालय/शिक्षक को संकेत दिया जाता है कि आपके विद्यालय में निरीक्षण पर आना है। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं किया जाता कि विद्यालय में वास्तव में निरीक्षणकर्ता देखना क्या चाहते हैं? लेकिन इस प्रकार के निरीक्षण को एक प्रकार से सकारात्मक माना जा सकता है कि विद्यालय के बेहतर प्रयासों का निरीक्षण होना है और विद्यालय/शिक्षक इसी दृष्टिगत अपनी तैयारी अपने तरीके से करते हैं। यह तरीका विद्यालय/शिक्षक के लिए मददगार सिद्ध हो सकता है, यदि अनुश्रवणकर्ता निरीक्षण से पूर्व ही स्पष्ट कर दें कि निरीक्षण के दिन वह विद्यालय/शिक्षक के कौन-कौन से कामों एवं बातों का निरीक्षण करना चाहेंगे। इससे निरीक्षण में आकस्मिकता का तत्व भले ही कम हो जाएगा, परंतु विद्यालय/शिक्षक उपलब्ध समय में उन विशेष कामों/बातों में और बेहतर करने का प्रयास कर सकते हैं। वास्तव में, होना यह चाहिए कि निरीक्षण तिथि के साथ-साथ किन चीज़ों का निरीक्षण होगा? इसकी पूर्व में ही विद्यालय/शिक्षक को सूचना दी जाए। बच्चों के अधिगम स्तर को जानने में रुचि है तो पर्याप्त समय रहते विद्यालय/शिक्षक को संप्रेषित कर दिया जाए कि निरीक्षण दिवस को बच्चों के अधिगम स्तर के बारे में कक्षा वार एवं विषयवार किन-किन बातों को जानने में निरीक्षणकर्ता की रुचि है? यकीनन इसके लिए निरीक्षणकर्ताओं को भी सम्यक तैयारी

की आवश्यकता होगी। इस प्रकार के निरीक्षण विद्यालय/शिक्षकों को अपने सकारात्मक पक्ष को सामने लाने का अवसर सृजित कर सकते हैं। ऐसे निरीक्षणों में विद्यालय को अकादमिक मामलों में किसी प्रकार की मदद या अनुसमर्थन तो नहीं मिल पाता है, हाँ, इतना ज़रूर होता है कि निरीक्षणकर्ता विद्यालय की सकारात्मक प्रगति में श्रेय लेने का कोई अवसर नहीं छोड़ते हैं। जनपद बागेश्वर के राजकीय आदर्श प्राथमिक विद्यालय, कपकोट एवं जनपद चमोली के राजकीय आदर्श प्राथमिक विद्यालय, स्यूणी, में अधिकांश निरीक्षण इसी मंतव्य से होते देखे गए हैं।

5. **विद्यालय में विशेष अवसरों पर जन-प्रतिनिधियों का आगमन** — आजकल विद्यालयों ने माननीय सांसदों/विधायकों से विद्यालय के लिए संसाधन जुटाने के लिए एक विशेष किस्म के नवाचार को अपनाया है। इसमें होता यह है कि किसी विशेष अवसर पर (यह प्रायः विद्यालय के प्रवेशोत्सव या वार्षिकोत्सव होते हैं।) माननीय सांसद/विधायक या सक्षम जनप्रतिनिधि को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित करके सांसद/विधायक/ज़िला निधि से विद्यालय के लिए संसाधन प्रदान करने का अनुरोध करना। ऐसे में विद्यालय में माननीयों के आगमन के साथ ही प्रशासनिक एवं शिक्षाधिकारियों की उपस्थिति स्वाभाविक रूप से हो जाती है। इस अवसर का उपयोग कतिपय प्रशासनिक एवं शिक्षाधिकारी विद्यालय निरीक्षण के लिए करते हैं। यह एक तरह से खानापूर्ति ही होती है। इसका विद्यालय को अकादमिक अनुसमर्थन से कोई संबंध नहीं होता है। हाँ, इसका एक लाभ ज़रूर होता है कि विद्यालय को माननीयों की घोषणा के अनुरूप संसाधन मिलने की उम्मीद बंध जाती है और कभी-कभी पूरी भी हो जाती है। ऐसे आयोजनों से पूर्व अपने विद्यालय के सकारात्मक पक्ष को सामने लाने के लिए अतिरिक्त प्रयास किए जाते हैं ताकि इसका विद्यालय की अकादमिक प्रगति पर कुछ-न-कुछ सकारात्मक असर तो ज़रूर पड़ता होगा।

6. **अभिभावकों/समुदाय के लोगों का आगमन** — अभिभावक यदि अपने पाल्यों की पढ़ाई के लिए जागरूक हों और उनके पास समय उपलब्ध हो तो विद्यालय आकर अपने बच्चों की प्रगति के बारे में जानने-समझने की कोशिश करते हैं। यदि इस क्रम में विद्यालय एवं अभिभावकों में बेहतर संवाद स्थापित हो जाए तो शिक्षकों को यह जानने-समझने में मदद मिलती है कि अभिभावकों की अपेक्षाएँ क्या हैं? यदि विद्यालय/शिक्षक के दायरे में हैं तो इन्हें किस प्रकार से पूरा किया जा सकता है? यह संबंध मज़बूत हो जाने पर समुदाय, विद्यालय हेतु भौतिक संसाधन जुटाने का प्रयास करते देखे गए हैं, बहुत-से विद्यालयों में शिक्षकों की कमी के दृष्टिगत समुदाय द्वारा अपने संसाधनों से अस्थायी शिक्षकों की व्यवस्था भी की गई है। यह एक सकारात्मक संबंध की सृजना करता है। इसके विपरीत विद्यालयों में समुदाय से कुछ ऐसे लोगों

का आगमन भी होता है, जिनकी रुचि विद्यालय के निर्माण कार्य संबंधी ठेके या फिर कुछ ऐसे ही मामलों में होती है। ये प्रधानाध्यापक/शिक्षक पर अनियमितता का दोषारोपण करते हुए अपने पक्ष में माहौल बनाने का प्रयास करते हैं। यह सब बच्चों के सामने घटित हो रहा होता है। ऐसी स्थिति शिक्षक की हैसियत को तो प्रभावित करती ही है, साथ ही शिक्षक के बारे में बच्चों के मन में जो मूल्य विकसित हो रहे हैं, उन पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि छोटे बच्चों में मूल्यों के बीजारोपण हेतु शिक्षक का आचरण-व्यवहार एक रोल मॉडल के समान होता है।

7. **ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के अभिकर्मियों द्वारा विद्यालय अनुश्रवण**— यह निरीक्षण की प्रशासनिक भयावहता की तुलना में सहज माना जाता है। ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान फ़ैकल्टी से यह अपेक्षा की जाती है कि वहाँ क्या घटित हो रहा था? इसको ही न देखें, वरन् क्यों घटित हो रहा था? इस बारे में शिक्षक से बात करें, उनका पक्ष सुनें। अनुश्रवण का स्वरूप भी प्रायः आकस्मिक ही होता है और न ही विद्यालय/शिक्षक को इसकी पूर्व सूचना दी जाती है। अच्छा हो यदि अनुश्रवण की पर्याप्त समय पूर्व ही सूचना दे दी जाए तथा यह भी स्पष्ट कर दिया जाए कि अनुश्रवण में शिक्षण के कौन-कौन से बिंदुओं का अनुश्रवण किया जाएगा। दूसरी ओर अनुश्रवणकर्ता पूरे विद्यालय समय में विद्यालय रहना पसंद नहीं करते (संभवतः कुछ उत्साही फ़ैकल्टी ऐसा करती भी हों, परंतु यह आम अभ्यास तो नहीं है।), अतः अनुश्रवण का मुख्य उद्देश्य विद्यालय को अनुसमर्थन देना पूर्ण नहीं हो पाता। विद्यालय/शिक्षक ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के अभिकर्मियों के विद्यालय अनुश्रवण को सहजता से लेते हैं। यदि ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान फ़ैकल्टी से विश्वासाश्रित संबंध है तो शिक्षक अपनी अकादमिक समस्याओं को साझा भी करते हैं। इसमें बस एक खामी प्रमुख रूप से नज़र आती है, वह है निरंतरता की कमी। विद्यालय को अनुसमर्थन देना एक सतत प्रक्रिया है, जिसमें अनुश्रवणकर्ता को उस विद्यालय में बार-बार जाने की आवश्यकता होगी, शिक्षक से विश्वासाश्रित संबंध स्थापित करने होंगे। अकादमिक अनुसमर्थन देने हेतु गहन तैयारी करनी होगी। एक बार किसी विद्यालय का अनुश्रवण कर देने मात्र से इस लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सकता है।

विद्यालय अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन का प्रभावी तरीका क्या हो?

विद्यालयों के निरीक्षण, अनुश्रवण एवं विभिन्न आगमनों का विश्लेषण करने के बाद यह विचार करना ज़रूरी हो जाता है कि विद्यालय को अनुसमर्थन देने के लिए विद्यालय में आगमनकर्ताओं (निरीक्षणकर्ता, अनुश्रवणकर्ता या अनुसमर्थनकर्ता चाहे किसी भी विहित नाम से संबोधित किया जाए) को कौन-सा तरीका एवं व्यवहार अपनाना चाहिए जिससे विद्यालय को अपने शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद मिल सके। इसके लिए सबसे पहले अनुसमर्थन की स्पष्टता ज़रूरी है।

अकादमिक संदर्भों में अनुसमर्थन का अर्थ है 'शिक्षक को शिक्षण-अधिगम से संबंधित मामलों/समस्याओं के समाधान के लिए अकादमिक समाधान के मार्ग में शिक्षक का सहयात्री बनना, समाधान को लागू करने हेतु शिक्षक का सशक्तिकरण करना। अनुसमर्थन में अनुसमर्थनकर्ता एवं शिक्षक मिलजुलकर समस्या समाधान की ओर बढ़ते हैं। अनुसमर्थनकर्ता अपना विचार/समाधान थोपता नहीं है। इसमें शिक्षक की पहचान/हैसियत (इनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है।) की संवेदनशीलता का खयाल रखा जाता है।

अनुसमर्थन के लिए निम्न मूलभूत बातों की आवश्यकता होती है —

- अनुसमर्थनकर्ता एवं शिक्षक के मध्य अनुसमर्थन के उद्देश्यों को लेकर स्पष्टता।
- अनुसमर्थनकर्ता एवं शिक्षक के मध्य विश्वासाश्रित संबंध। यह संबंध इस दृष्टि से बहुत ही संवेदनशील है कि शिक्षक के सुधार/विकास के क्षेत्रों (Area of Development) को किसी अन्य से साझा न करने हेतु आश्वासन होना चाहिए। तभी शिक्षक अपनी समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में अनुसमर्थनकर्ता के समक्ष रख सकेंगे। हाँ, शिक्षक की उपलब्धियों को अवश्य साझा करना चाहिए और इसका संपूर्ण श्रेय भी उस शिक्षक विशेष को ही दिया जाना चाहिए।
- मिलजुलकर समाधान खोजने के प्रति लचीलापन।
- अनुसमर्थन, शिक्षक के सशक्तिकरण के क्रम में होना चाहिए, न कि अनुसमर्थनकर्ता की अकादमिक सत्ता को स्थापित करने हेतु। अनुसमर्थन में अनुसमर्थनकर्ता, शिक्षक के मेंटर (Mentor) के रूप में कार्य करता है। इस प्रक्रिया में समस्या समाधान के विकल्प एवं उनके परिणामों के बारे में विकल्प सुझाए जाते हैं, परंतु अंतिम निर्णय लेने के लिए शिक्षक को स्वतंत्रता होती है। अनुसमर्थनकर्ता तो सिर्फ़ निर्णय लेने एवं उसे लागू करने में शिक्षक की हिचक को दूर करने में मदद करता है। इस प्रकार यह शिक्षक को सशक्त करने की प्रक्रिया है।
- अनुसमर्थन के क्रम में शिक्षक की किसी भी भूमिका में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता (जैसे— पढ़ाने-लिखाने का विशेष तरीका, सिखाने के लिए अनुसमर्थनकर्ता द्वारा स्वयं ही कक्षा लेना। यदि ऐसा करना ज़रूरी ही है तो इसके लिए शिक्षक से पूर्व अनुमति हो और बच्चों को कहीं भी ऐसा न लगे कि उनके शिक्षक को कोई सिखा रहा है। फिर शिक्षक के लिए वही तरीका अपनाना बाध्यकारी नहीं होना चाहिए। संभव है शिक्षक के साथ सतत संवाद बनाए रखकर शिक्षक इससे भी बेहतर तरीका स्वयं खोज लें।)। यह समस्या हल करने की शिक्षक की क्षमता संवर्द्धन के क्रम में होता है।
- अनुसमर्थन, वस्तुतः शिक्षक को समस्या समाधान में मदद करने का एक तरीका है, शिक्षक की प्रत्यक्ष मदद करना नहीं है। इन दोनों में बहुत सूक्ष्म अंतर है, वह अंतर शिक्षक की अधिभावी पहचान से संदर्भित है।

- अनुसमर्थन में निरंतर फ़ीडबैक प्रक्रिया अपनाई जाती है। अनुसमर्थनकर्ता एवं शिक्षक आपस में एक-दूसरे को लगातार फ़ीडबैक देकर समस्या समाधान तक पहुँचते हैं। इसके लिए दोनों के मध्य विश्वासाश्रित संबंध होना बहुत ज़रूरी है।
- अनुसमर्थन में अनुसमर्थनकर्ता कभी भी अपने निर्णय शिक्षक पर थोपता नहीं है। वह तो समस्या समाधान हेतु केवल विकल्प सुझाता है और उन विकल्पों में चयन की स्वतंत्रता देता है। ऐसा करके शिक्षक को प्रयासों की अधिकारिता (Ownership) लेने के लिए तैयार करता है। अनुसमर्थनकर्ता को परिणामों की जवाबदेही में सहभागिता करनी चाहिए, परंतु सफलता का पूरा श्रेय संबंधित शिक्षक को देना चाहिए।

इसके लिए ज़रूरी है कि वर्तमान में क्रियाशील प्रशासकीय ढाँचा विद्यालयों का निरीक्षण ज़रूर करे, परंतु इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया जाए कि विद्यालय की भौतिक एवं अकादमिक ज़रूरतों के लिए आवश्यक निर्णय लें। विद्यालय/शिक्षकों को अकादमिक अनुसमर्थन देने के लिए ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, ब्लॉक स्तर पर ब्लॉक संदर्भ व्यक्ति एवं संकुल स्तर पर संकुल संदर्भ व्यक्ति के अकादमिक ढाँचे को गतिशील किया जाए। अकादमिक अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन हेतु ज़रूरी ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों से संवर्द्धित किया जाए। प्रशासकीय तंत्र शिक्षक एवं विद्यालय की भौतिक ज़रूरतों को संबोधित करें तथा अकादमिक तंत्र शिक्षक/विद्यालयों की अकादमिक ज़रूरतों के लिए काम करें।

अनुसमर्थन की प्रक्रियाएँ

अनुसमर्थन न तो एक बार अपनाई जाने वाली प्रक्रिया है और न ही आकस्मिक रूप से किया जाने वाला कोई कार्य। इसमें निरंतरता एवं विश्वासाश्रित संबंधों की निर्मिति की ज़रूरत होती है। अनुश्रवण की प्रक्रिया में मुख्य रूप से निम्नलिखित बिंदु सम्मिलित हैं —

1. **विश्वासाश्रित संबंधों की निर्मिति** — यह संबंध एक अनुश्रवण में बन जाना कठिन है, इसके लिए बार-बार उस विद्यालय जाने एवं शिक्षक से संवाद स्थापित करने की ज़रूरत होती है।
2. **शिक्षक की समस्या / चुनौती को समझना**—इसके लिए अनुसमर्थनकर्ता को शिक्षक की स्थिति में स्वयं को रखकर देखना होता है। इसके लिए सहानुभूति के बजाय तदनुभूति (Putting own feet in another person's shoes) की आवश्यकता होती है। तभी आपसी संबंध विश्वासाश्रित संबंधों में परिणित होते हैं।
3. **समस्या समाधान हेतु विकल्प उपलब्ध कराना** — शिक्षक की अकादमिक समस्या शिक्षण के ज्ञान क्षेत्र या कौशल से संबंधित हो सकती है। ज्ञान क्षेत्र से संबंधित समस्या के समाधान के लिए अनुसमर्थनकर्ता, शिक्षक को उपयोगी साहित्य उपलब्ध करा सकता है या फिर उन स्रोतों की जानकारी दे सकता है, जहाँ से यह आसानी से उपलब्ध हैं। आजकल इंटरनेट के युग में इस प्रकार का साहित्य/उपयोगी सामग्री एक क्लिक में उपलब्ध है। इसी प्रकार कौशल से संबंधित समस्या के समाधान के लिए

ऑडियो-वीडियो सामग्री उपलब्ध कराई जा सकती है।

4. **विकल्पों के चयन एवं लागू करने की शिक्षक को स्वायत्तता देना** — अनुसमर्थन के इस चरण में ज्ञान एवं कौशल से संबंधित समस्या के समाधान के लिए सुझाए गए विकल्पों में से विकल्प चयन की शिक्षक को स्वायत्तता देनी ज़रूरी है, शिक्षक पर कोई भी विकल्प थोपा नहीं जाना चाहिए। हाँ, यह ज़रूरी है कि सर्वोत्तम विकल्प चयन में शिक्षक कठिनाई महसूस कर रहे हों तथा मदद की ज़रूरत बता रहे हों तो इसमें निर्णय लेने में शिक्षक की मदद की जानी चाहिए, अपना निर्णय तो किसी भी दशा में आरोपित नहीं किया जाना चाहिए। वस्तुतः अनुसमर्थन विद्यालय/शिक्षक को सशक्त बनाने की प्रक्रिया है, इसके लिए ज़रूरी है कि शिक्षक निर्णयों की अधिकारिता (Ownership) लें।
5. **परिणामों की जवाबदेही** — अनुसमर्थन में अनुसमर्थनकर्ता, शिक्षक के मेंटर (Mentor) की भूमिका में होता है, परिणामों की सफलता के लिए स्वयं आश्वस्त रहता है और शिक्षक को आश्वस्त करता है। फिर भी परिणाम में असफल रहने पर इसकी ज़िम्मेदारी लेता है। यह तथ्य शिक्षक को अनुसमर्थनकर्ता पर समग्र विश्वास करने का सशक्त आधार देता है।
6. **सफलता की अधिकारिकता(Ownership) शिक्षक को देना** — यह अनुश्रवण प्रक्रिया की सफलता की कुंजी है कि अनुसमर्थनकर्ता, सफल परिणामों के लिए पूरा श्रेय शिक्षक को दें। यदि इस सफलता को किसी अन्य फ़ोरम में साझा करना हो, तब भी इस बात की पूरी ईमानदारी बरती जाए कि इसका श्रेय शिक्षक को ही दिया जाए। यह व्यवहार अन्य विद्यालयों के शिक्षकों को अनुसमर्थन प्रक्रिया में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करेगा।

संदर्भ

गाँधी, एम. के. 1957. *अक्षर ज्ञान— 'सत्य के प्रयोग' — आत्मकथा*. अनुवादक, काशिनाथ त्रिवेदी. नवजीवन ट्रस्ट, नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

भट्टाचार्यजी, जयीता. 2015. प्रोग्रेस ऑफ़ टीचर एजुकेशन इन इंडिया – ए डिस्कशन फ्रोम पास्ट टु प्रेज़ेंट. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंस स्टडीज़ (IJHSSS) ए पियर – रिव्यूड-बाइ, मंथली बायलिंग्वल रिसर्च जर्नल,* ISSN: 2349-6959 (ऑनलाइन), ISSN: 2349-6711 (प्रिंट), वॉल्युम-II, वॉ-I, जुलाई-2015. पृ. 213–222. स्कॉलर पब्लिकेशन, करीमगंज, असम.

शिक्षा मंत्रालय. 1964–66. *शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास*. शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली.

सय्यद, नुरुल्लाह और जे. पी. नायक. 1962. *ए स्टूडेंट्स हिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन इन इंडिया (1800-1960)*. मैकमिल्लन एंड कॉ. लिमि. बॉम्बे, कलकत्ता, मद्रास, लंदन, सेंट मार्टिन प्रैस ईंकोर्पोरेट, न्यू यॉर्क.